सीखे सबक के लिए कोई उम्मीद?

लॉरिंडा कीज़ लौंग

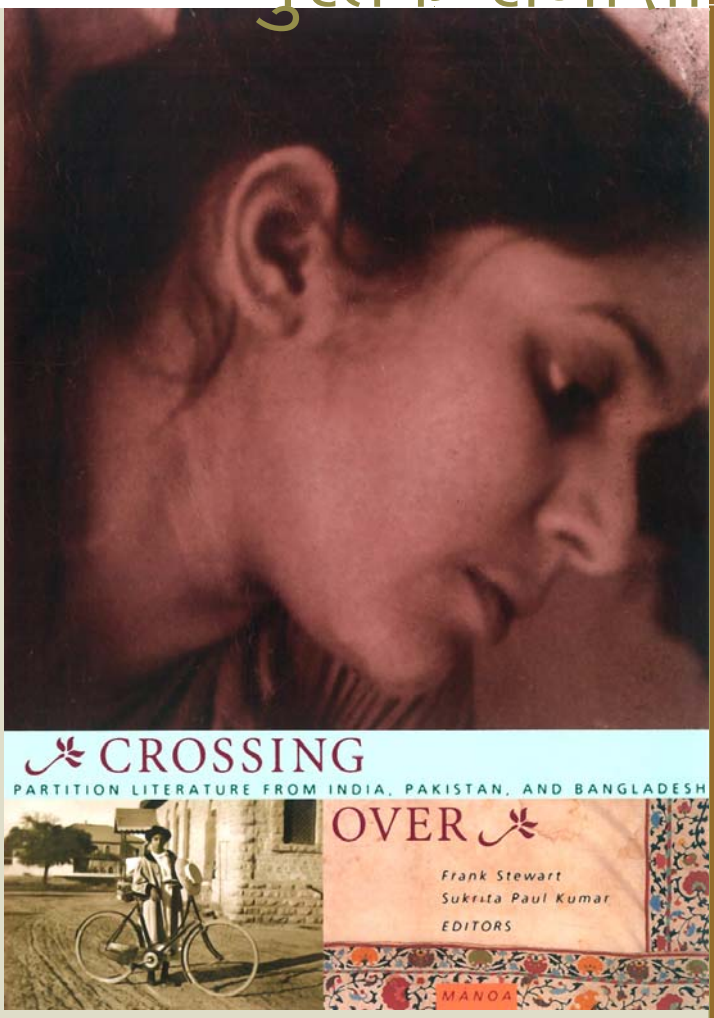

क्रॉसिंग ओवर

भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश से विभाजन साहित्य
फ्रैंक स्टीवर्ट और सुकृता पॉल कुमार द्वारा संपादित दक्षिण एशिया संस्करण,
दोआबा प्रकाशन, 2008 इंडो-अमेरिकन कोऑपरेटिव पब्लिशिंग रिप्रिंट
कॉपीराइट: यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई प्रेस।

वर्ष 1947 में हुए भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन और वर्ष 1971 में पुनर्विभाजन से जुड़ी घटनाओं, संख्याओं, विभीषिकाओं, उनके कारणों और परिणामों पर पत्रकारों, शोधकर्ताओं, इतिहासकारों ने काफी लिखा है। इसलिए हममें से बहुतेरे लोगों ने इस विषय पर काफी पढ़ लिया है, अध्ययन किया है और सुना है, साक्षात्कार किए हैं और अब हमें लगता है कि हम जानते और समझते हैं कि क्या हुआ, कैसे हुआ।

लेकिन एक और तरह की समझदारी है, झटका देने वाली, चीज़ों को अचानक साफ-साफ दिखाने वाली इंसानी दिल की एक झलक, ''क्यों'' को एक निजी स्तर पर स्पष्ट करती, कई बार सुनाई गई कहानी को एक नए कोण से दिखाती। और यह अलग तरह की समझदारी अक्सर साहित्य से मिलती है।

भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश से विभाजन साहित्य के संकलन *क्रॉसिंग ओवर* के वर्ष 2007 में प्रकाशन और वर्ष 2008 में पुनर्प्रकाशन से यही समझदारी बनी है। इस संकलन के कुछ अंश पहली बार अनूदित हुए हैं या पहली बार अंग्रेजी पढ़ने वाले पाठक वर्ग के लिए उपलब्ध हो पाए हैं।

कहानियों और उपन्यास अंशों के इस संकलन में लगभग हर संभव परिप्रेक्ष्य से, पागल से लेकर खाते-पीते आदमी तक, बलात्कार की शिकार से लेकर हत्यारे तक, बच्चे से लेकर भावहीन सिपाही तक, देखी गई साक्षियां प्रस्तुत हैं। कई विवरणों में पश्चाताप या राहत की झलक तक नहीं दिखती। यहां मनुष्य के पतन का गर्त दिखता है, बचे रह पाने का चमत्कार, स्मृति का पिटी लीक पर चलना, विश्वासघात का अपराध बोध, वेदना और खो देने की हताशा दिखती है।

लेकिन लगता है कि मूल प्रकाशक यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई का अंतरराष्ट्रीय लेखन का छमाही मानोआ जर्नल का आदर्श वाक्य है- समझदारी होगी तो आशा बनी रहेगी। इसीलिए अगस्त 2007 में दिल्ली में जर्नल के इस विशेषांक के जारी किए जाने के समारोह में अमेरिकी दूतावास ने भी भाग लिया। और अब दिल्ली स्थित अमेरिकी दूतावास इंडो-अमेरिकन कोऑपरेटिव पब्लिशिंग रिप्रिंट प्रोग्राम के अंतर्गत प्रकाशित वाजिब मूल्य वाला दक्षिण एशिया संस्करण जनवरी में जारी कर रहा है जिसमें और भी चित्र और पाठ हैं।

संकलन के संपादकगण फ्रैंक स्टीवर्ट और सुकृता पॉल कुमार कहते हैं कि इन रचनाओं के चुनाव और प्रस्तुति का उद्देश्य ''इतिहास के उस त्रासद मोड़ पर घिर गए साधारण लोगों की भावनाओं और प्रतिक्रियाओं का चित्रण है जब सहनशीलता, सम्मान और करुणा ध्वस्त हो गई।'' लगभग पत्रकारीय असम्पृक्ति से काम लेते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि हल उपलब्ध कराना या आरोपियों की पहचान करना इन रचनाओं का उद्देश्य नहीं है।

क्या पाठक के लिए भी इतना ही असम्पृक्त हो पाना संभव है? अधिकांश रचनाएं उद्वेलित करती हैं। सआदत हसन मंटो की *तीतवाल का कुत्ता* पढ़ते मैं गुस्से और हिकारत से भर उठी। बुरा आदमी-भला आदमी के परिचित घटनाक्रम की टोह में मैं चरित्रों की अमानवीयता को उनकी दिखाई भलमनसाहत से संतुलित करती, अपने पूर्वाग्रहों की झलक देखती, डरती-सहमती, कहानी पढ़ती रही। और आखिर में पता चला कि भला आदमी तो उसमें सिरे से गायब था। और अपने दिल-दिमाग के बारे में भी मेरी जानकारी काफी बढ़ी।

और भीष्म साहनी की कहानी, *ट्रेन अमृतसर पहुंच गई* को पढ़ने का अनुभव। एक मां के प्रेम की सत्यानासी भयावहता, आनन्द के कारण हुई बर्बरता, इसे पढ़कर कोई उद्वेलित हुए बिना नहीं रह सकता।

पाली में साहनी फिर प्रेम को विषय बनाते हैं। ढेरों लोगों का प्रेम, नि:स्वार्थ प्रेम। लेकिन यह प्रेम समझदारी नहीं लाता, पूर्वाग्रहों के विरुद्ध काम नहीं करता बल्कि राष्ट्रीय, धार्मिक और सांस्कृतिक अंतरों को और गहरा बनाता है।

खदीजा मस्तूर की *ठंडा मीठा पानी* का नायक कहता है, ''मुझे शांति से प्यार है, जंग से नफरत है। लेकिन में आज़ादी, इज्जत और अपने वतन को बनाए रखने के लिए लड़ी जा रही जंग से भी उतना ही प्यार करता हूं जितना शांति से।'' हम सभी जानते हैं कि किसी भी संघर्ष में दूसरे पक्ष के लोग भी ऐसा ही सोचते हैं। शायद साहित्य के माध्यम से हम इस बात को समझ भी पाएं।

ज़्यादा जानकारी के लिए:
मानोआ जर्नल
http://www.hawaii.edu/mjournal/
इंडो-अमेरिकन कोऑपरेटिव पब्लिशिंग कैटेलॉग
http://americanlibrary.in.library.net/